समाज में कामकाजी नारी की भूमिका

*डॉ. हरिश चन्द्र

शोध सारांश

भारतीय परिवेश में प्राचीन समय से ही हर कदम पर नारी को यह सिखलाया जाता रहा है कि उसकी दुनिया घर, परिवार, पति और बच्चों तक ही सीमटी हुई है। लेकिन आज मौजूदा समाज में पश्चिमी सभ्यता के अनुकरण के कारण सामाजिक मूल्यों एवं प्रवृत्तियों में बहुत कुछ बदलाव आया है। मध्यवर्गीय परिवारों में कामकाजी नारी की अपनी कतिपय समस्याएँ हैं। इन समस्याओं का सामने आना इस बात का सूचक है कि समाज में परिवर्तन हर क्षेत्र में तीव्र गति से हो रहा है।

हमने पाया है कि पहले जरूरत मंद महिलाएं ही नौकरी–पैशा अपनाती थीं, लेकिन अब मध्यवर्गीय महिलाएं आर्थिक विवशता के कारण नहीं अपितु अपने शौक कामकाजी बनाती जा रही है। इसकी मुख्य वजह दिन–प्रतिदिन बढ़ती महंगाई, आर्थिक जरूरतों में बढ़ोतरी एवं आजाद रहकर अपने जीवन को सुखमय बनाने की इच्छा है। आज समाज में कामकाजी महिलाओं की मांग ज्यादा हो गई है जिससे उनमें एक नई चेतना का आगाज हो गया है। आज समाज में कामकाजी महिलाओं के विषय में यह कहना समीचीन होगा–मनुष्य की आत्मा स्वतन्त्र है। फिर चाहे वह औरत के शरीर के अन्दर निवास करती हो, चाहे आदमी के शरीर के अन्दर। इसी से औरत और आदमी का अपना–अपना व्यक्तित्व अलग रहता है।

कार्यालयों में कुछ समय पहले तक सम्मान कम मिलता था, लेकिन अब जैसे–जैसे महिलाओं ने कार्यालयों में अपने कार्य क्षेत्र को बढ़ाया है वैसे–वैसे ही उनका आदर–भाव व सम्मान बढ़ता जा रहा है। पहले केवल कुछ विवाहित नारियां ही कामकाजी हुआ करती थीं लेकिन अब विवाहिताओं के साथ–साथ विधवा, अपाहिज व कुवांरी लडकियां भी नौकरी–पेशे से जूड़ती जा रही है। प्रायः उनको यह भी सुनने को मिलता है कि उन्होंने घर को घर नहीं दफतर या सराय बना कर रख छोड़ा है। वर्तमान समाज में समान शिक्षा अधिकार फलस्वरूप उच्च शिक्षा एवं आत्मनिर्भरता प्राप्त करने की दिशा में पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त होने के बाद औरतों में घर से बाहर निकल काम करने की इच्छा बहुत हद तक बढ़ी है।

आज नौकरी–पेशा नारी घर–बाहर के काम के बोझ तले दब गई है, और साथ ही–साथ समाज के दोहरे नैतिक मानदंड और कथनी तथा करनी का भेद उसे कई तनावों से ग्रस्त कर देता है। देखने में आता है कि जो कामकाजी महिला अपने सहयोगियों के साथ कम बोलती है वे उनमें अपने आप को अजनबी महसूस करती हैय यदि वे उनसे खुलकर बात करती हैं तो उन्हें पुरूष सहयोगी उनका गलत लाभ उठाने की सोचते हैं और समाज भी उन्हें सोसायटी गर्ल का बिल्ला देने से नहीं हिचकिचाता है। अर्थात एक ओर अकेलापन, कुण्ठाएं और असंतुलन है तो दूसरी तरफ बदनामी वह दोनों में से किसी एक से भी मुक्त नहीं हो पाती।

आधुनिक काल के कहानीकारों ने अपनी कहानियों में कामकाजी औरतों के अपने काम के प्रति संतुष्ट–असंतुष्ट

दोनों ही स्थितियों को रेखांकित किया है। आज नारी समाज को अपने ऊपर गर्व है कि वे केवल घरेलू गृहणियॉ नहीं वरण आत्मनिर्भर है। वे सभी सुख–सुविधा अर्जित नारी देश, समाज एवं पारिवारिक दायित्वों को पूर्ण करती हुई सराहनीय व्यक्तित्व को प्राप्त करती हैं। माना की नारी कामकाजी हो गई वे पुरूष की तरह ही काम करती हैं परन्तु उसके के बाहर चाहे कितने ही प्रतिष्ठित पद पर कार्य करती होय घर में वह एक पत्नी, मॉ होती है तथा परिवार के सभी सदस्यों को उसके प्यार, अपनेपन एवं ममता की चाहत होती है।

नारी वह जो कार्य क्षेत्र से जुड़ी है फिर भी वह अपने परिवार की जिम्मेदारियों के प्रति सजग रहते हुए घर बाहर दोनों स्थानों पर सफल भी है। लेकिन हम इस बात से भी इन्कार नहीं कर सकते कि इस दोहरी जिम्मेदारी के बीच तालमेल रखने में समयानुकूल समझबूझ एवं समय की आवश्यकता होती है। स्वावलम्बनी होने का समर्थन नारी का सार्मथ्य नारी का महत्त्वहीनता के विश्वास को मिथ्या कर देता है और अपने पैरों तले पक्की जमीन पा जाने पर वह अनुभव करती है कि उसे अधिकार चाहिए निर्णय लेने का, राह चुनने का संतान के भविष्य काय क्योंकि घर को सुचारू रूप से बनाने में वह न केवल पति के समान योगदान देती है अपितु घर, परिवार व बच्चों के अधिपत्य को नही त्यागना चाहता, इसलिए पुरूष–महिला दोनो के अधिकार आमने–सामने आ जाते है और यही से उनमें अपने–अपने अधिकारों के संघर्ष का आगाज होने लगता है। इन बातों का सामंजस्य न होने पर नारी के व्यवहार में जाने–अनजाने में चिड़चडापन, झंझलाहट व मानसिक तनाव पैदा हो जाता है।

हाल समय में नारी के दृष्टिकोण में बदलाव आया है, वह अब परम्परावाद को ठेंगा दिखा आगे बढ़ चली है। अब वह अधिक शिक्षित हो पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण कर आजाद ख्यालों को जन्म देने वाली महिला के रूप में विकास पथ पर बढ चली है। अब वह पति को परमेश्वर तभी तक मानती है जब तक उसका व्यवहार पत्नी के प्रति अनुकूल रहे। व्यवहार की प्रतिकूलता होने पर वह विवाह जैसे पवित्र बन्धन को तोड़ एकाकी जीवन जीने में भी कोई परहेज नही करती है। शिक्षित हो आत्मनिर्भर बनने पर नारी अब अपने व्यक्तित्व को अधिक महत्व दे रही है और उसकी मानसिकता अब स्वतंत्र रूप से जीवन जीने की बन चली है।

लेखक–लेखिकाओं ने समाज में कामकाजी औरतों की समस्याओं और जरूरतों जैसे–रूढ़िवाद की खिलाफत, जीवन में व्यस्तता और उदासीनता, आर्थिक दबाव, पत्नी के प्रति पति का दायित्वहीन व अनैतिक व्यवहार, महत्वकांशा, पारिवारिक जीवन में असामंजस्य, यौन विकृतियॉ, विवाह संस्था का निषेध, आदि का अपनी कहानियों मे सहज, सरल और गम्भीर सभी रूपों में चित्रण किया है।

कामकाजी महिला की स्थिति का मूल्यांकन करते हुऐ डॉ0 पुष्पाल सिंह अपने निष्कर्ष कुछ इस प्रकार देते है। उनके विचारों में औरतें अब घर की चार दीवारी से निकल पुरूष के साथ हर काम में सहभागिन बन चली है। अब वह पुरूष का हर कार्य में सहयोग कर हाथ बटा रही है और साथ ही साथ घरेलू कार्यो को करने में भी भूमिका अदा कर रही है। ऐसा करने में वह थक–हार टूट भी जाती है, जिससे उसके व्यवहार में निराशा व थकान की झलक आने लगी है। मुख्य बात यह है कि वह परिवार के सभी सदस्यों का ध्यान रखती है, पर धर के सदस्य उसकी चिन्ता या सहयोग नही करते, जिससे निराशा भरा जीवन महसूस करती है।

कामकाजी महिलाओं के संघर्षो और हितों को आधुनिक कहानीकारों ने बखूबी चित्रित किया है। राजी सेठ, सुधा अरोड़ा, महीप सिंह, मन्नू भण्डारी, निरूपमा सेवती, राजकमल चौधरी, उषा प्रियम्वदा, हिमांशु जोशी, मेहरूत्रिसा परवेज, पुष्पा मानकोटिया, सिद्धेश, ममता कालिया, राजकुमार वर्मा, कृष्णा अग्निहोत्री आदि कई कथाकारों ने कामकाजी महिलाओं की समस्या और उसके निवारण के लिए अपनी कहानियों को आम–जन के समक्ष रख बेहतरीन भूमिका अदा कर बहुत ही सराहनीय कार्य किया है।

इन्हीं कथाकारों की कुछ खास रचनाएं बंद्धमुष्टी, तलफलाहट, विषपुरूष, मॉ यह नौकरी छोड़ दो, विरासत, मध्यान्तर, तलाश के बाद, घिरे हुए क्षण, दंशित, विडम्बना, तुम एक गुलमोहर, फालजू चीज, खण्डित, एक साधारण–असाधारण, अनुकृति, किरचों पर सजा इन्द्रधनुष आदि कहानियों में कामकाजी औरतों की सामाजिक और मनोवैज्ञानिक चेतना का चित्रण किया है।

डॉ0 प्रोमिला कपूर के कथानुसार–''आज की दुनिया कुल मिलाकर अपेक्षाकृत तेजी से बदली हुई दुनिया है। यह बदलाव कई दिशाओं में आ रहा है। सामाजिक दृष्टि से देखे तो भारत की स्वतंत्रता के बाद से होने वाले सबसे अधिक सारभूत और उल्लेखनीय परिवर्तनों में से एक है। नारी समाज की आपेक्षित मुक्ति, घरों की चार दीवारियों से निकलकर उसका बारही दुनिया की हलचल में शामिल होना''

आधुनिक काल के कहानीकारों ने कहानियों के माध्यम से कामकाजी नारियों के उस तथ्य को उकेरा है जिसमें नारी अपनी अज्ञानता के कारण अपने जीवन में संकटों से घिर जाती है। शिक्षा जैसे अमूल्य रत्न से वंचित नारी अपने अधिकारों से अनभिज्ञ होने की वजह अपने जीवन को कष्टप्रद बना देती है। आर्थिक पराधीनता नारी जीवन में समस्याओं का मूलाधार होती है। आखिर परावलम्बी नारी स्वतंत्र कैसे हो सकती है? आज आधुनिकता में नारी के पास कामकाजी होने के अनेकानेक मार्ग खुले हुए है, जिनको क्रियान्वित करते हुए वह अपने परिवार के जीवन स्तर में सुधार एवं स्वयं तथा बच्चों की सुख–सुविधाओं को बन्दोबस्त करती है। इन वास्तविकताओं का आधुनिक काल में बखूबी और विस्तृत बखान किया गया है।

अमुमन ऐसा भी देखने में आता है कि नारी दोहरी मानसिकता से ग्रस्त है, उसका शोषण पति तथा उसके परिवार द्वारा दूसरे रूपों में होने लगा है। घर की चार दीवारों में तो उसे स्वतंत्रता मिल गई है परन्तु घर के बाहर मानसिक स्वतंत्रता उसे अभी मिल नही पाई है। आज भी वह उतनी ही भावुक, संवेदनशील तथा पुरूष की नौकरी करने असमर्थता होने पर नारी जब अपने आप को कामकाजी बनाती है, तब वह घर पर अपना अधिकार बना, अपने हिसाब से घर को चलाने में अपना रूतबा रखने लगती है।

उषा प्रियम्वता की कहानी 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' में ''पुरूष का स्वामित्व समाप्त होने का तनाव सुबोध की मानसिक यातना का कारण यही संघर्ष है जब तक वह कमाता था परिवार का संचालन सूत्र उसके हाथ में था। लेकिन जब से वह बेकार है और छोटी बहन कमाने लगी है तब से धीरे–धीरे उसके स्थान पर वृंदा का अधिकार होता जा रहा है। एक दिन घर लौटने पर सुबोध ने देखा कि उसके कमरे से मेज और कालिन निकाल कर वृंदा के कमरे में पहुॅच गया है बात चाहे बहुत बडी न हो लेकिन एक पुरूष के पौरूष और स्वाभिमान को चोट पहुंचाने के लिए इतना पर्याप्त है। पुरूष हदय का परम्परागत अहं जब एक नारी से आहत हुआ तो तनाव पैदा हो गया''

आधुनिक काल की कहानियों में नारी की सामाजिक स्थिति में अनुशीलत के पश्चात् हम निष्कर्ष रूप से देखते है कि साहित्व समाज की यर्थाभिव्यक्ति है। उसमें एक ओर मानवीय भावनाओं का मूर्त रूप मिलता है तो दूसरी तरफ युगधर्म की झलक भी दृष्टिगोचर होती है। इस तरह हम पाते है कि नव काल अपने लिए नए सामाजिक, सांस्कृति व धार्मिक मूल्यों का निर्धारण करता है। हम यह भी कह सकते है कि आज समाज अपनी आवश्यकताओं के अनुसार सामाजिक परिवेश मे प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं द्वारा अपने जीवन मूल्यों का निर्धारण करता है।

हाल समाज में नारी ने अपने को अभिन्न अंग के रूप में पेश किया है। हम यह जानते है कि किसी भी समाज की वास्तविक स्थिति का पता हमे उस काल की नारी की दशा, दिशा से होता है। समाज की श्रेष्ठता–अश्रेष्ठता का प्रश्न नारी की सामाजिक स्थिति की उन्नति–अवनति पर अवलंबित होती है। आधुनिक नारी अब भी पुरानी विचार–धाराओं से जूझते हुए अपने को उसमें धिरी पाती है, फिर भी उसने परिवार और समाज इन दोनो ही क्षेत्रों में

नए प्रतिमानों को गढ़ा है। इस आधार पर हम कह सकते है कि आज समाज में नारी ने निश्चय ही प्रभावपूर्ण स्थितियों को अर्जित किया है।

***सह आचार्य**
हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय बहरोड़, अलवर (राज.)

संदर्भ सूची

1. आशारानी व्होरा, भारतीय नारी, दशा और दिशा पृ. सं. 3
2. डॉ. वल्लभदास तिवारी, हिन्दी काव्य में नारी, पृ. सं. 46
3. डॉ. शीला रजवार, स्वतांत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में नारी मुक्ति की अवधारणा पृ.सं. 92
4. आशारानी व्होरा, भारतीय नारी, दशा और दिशा पृ. सं. 98
5. हंस पत्रिका, अक्टूबर, 2002, पृ. सं.–4
6. डॉ. के. एम. मालती, स्त्री विमर्शः भारतीय परिप्रेक्ष्य, पृ. सं. 128
7. डॉ. मुदिता चंद्रा, आधुनिक एवं हिन्दी कथासाहित्य में नारी का बदलता स्वरूप, पृ. सं. 182
8. महादेवी वर्मा, श्रंख्ला की कड़ियॉ, पृ. सं. 66
9. मृणाल पाण्डे, नारी देह की राजनीति से देश की राजनीति तक पृ. सं. 12
10. रोहिणी अग्रवाल, स्त्री लेखनः स्वप्न और संकल्प, पृ. सं. 290